P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-9* December- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भारतीय दर्शन में आत्मतत्व (न्याय–वैशेषिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में)

Theatricality in Indian Philosophy (In The Perspective of Jurisprudential Philosophy)

मनीषा सिंह
शोध छात्रा,
दर्शनशास्त्र विभाग,
डी0 ए0 वी0 कॉलेज,
कानपुर, उ0 प्र0, भारत

सारांश (Abstract)

भारतीय दर्शन में आत्मतत्व को सभी दर्शनों द्वारा काफी महत्व प्रदान किया गया है। आत्मतत्व को सभी दर्शनों में किसी न किसी रुप में स्वीकार भी अवश्य किया गया है। किन्तु सभी भारतीय दर्शनों में आत्मतत्व को लेकर भिन्न भिन्न मत है जैसे जैन दर्शन में चैतन्य को आत्मा का स्वरुप लक्षण माना गया है तो वही न्याय–वैशेषिक दर्शन ने इसका विरोध प्रकट करते हुए चैतन्य को आत्मा का आगन्तुक धर्म बताया है। जहां चार्वाक दर्शन में नित्य आत्मा को अस्वीकार किया गया है तो वहीं न्याय–वैशेषिक दर्शन में नित्य आत्मा को स्वीकार किया गया है। जैन दर्शन में अनेक जीववाद के सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त है अर्थात् उनके अनुसार जीव एक न होकर अनेक होते है। इस मत का समर्थन न्याय–वैशेषिक दर्शन द्वारा भी किया गया है। वे भी अनेक आत्माओं को स्वीकार करते है और उसको प्रमाणित करने के लिए अनेंकों तर्क भी देते है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय दर्शन में आत्मतत्व सम्बन्धी न्याय वैशेषिकों के विचार को यहां पर प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

In Indian philosophy, self-realization has been given great importance by all philosophies. Self-essence has also been accepted in some form in all philosophies. But in all Indian philosophies, there is a different opinion about self-realism, just as Jainism has considered Chaitanya as a characteristic of the soul, while the same Nyaya-Vaishika philosophy opposes Chaitanya as the inward religion of the soul..While the Charvaka philosophy has always rejected the soul, in the Nyaya-Vaisesika philosophy, the eternal soul has been accepted. In Jain philosophy, the principle of many Jivism is recognized, that according to them, there are many but not one life. This view has also been supported by the Nyaya-Vaisesika philosophy. They also accept many souls and give many arguments to prove them. The research article presented in this way is trying to present here the idea of self-determination in Indian philosophy.

मुख्य शब्द : आत्मतत्व, नित्य आत्मा, चैतन्य, ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता, विभु, अनेकता।
Keywords: Theatricality, Eternal Soul, Consciousness, Knower, Doer, User, Vibhu, Diversity.

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में न्याय दर्शन को वस्तुवादी दर्शन की संज्ञा प्रदान की गयी है। न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम जी है। जिन्हें अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता है। भारतीय दर्शन में न्याय दर्शन के समान ही वैशेषिक दर्शन भी एक वस्तुवादी दर्शन माना जाता है। इसीलिए वस्तुवादी भारतीय दर्शनों में वैशेषिक दर्शन का अपना एक विशिष्ट एवं अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद है। जिनका वास्तविक नाम उलूक था। इसीलिए वैशेषिक दर्शन को औलूक्य दर्शन के नाम से भी जाना जाता है। अनेक विषयों में न्याय–वैशेषिक दर्शनों के एक समान मत होने के कारण न्याय दर्शन और वैशेषिक दर्शन को एक समान तंत्र की संज्ञा प्रदान की गयी है। विशेषकर वैशेषिक दर्शन का आत्मा संबन्धी मत न्याय दर्शन के आत्मा संबन्धी मत के समान ही है। और अन्य बातों या विषयों में भी वैशेषिक दर्शन का मत न्याय दर्शन के समान ही है। इसलिए वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन को एक समान तंत्र कहने में कोई अतिश्योक्ति न होगी। क्योंकि ये प्रायः एक दूसरे के मत का

समर्थन करते रहते है। इसलिए हम यहां पर इन दोंनों के मतों को अलग–अलग न प्रस्तुत करके एक साथ प्रस्तुत करेंगें।

न्याय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में आत्मतत्व

आत्मा और मन को चेतन दृव्यों के अन्तर्गत रखा जाता है। मन को न्याय–वैशेषिक दर्शन में ग्यारहवी इन्द्रिय के रुप में माना गया है। लेकिन वैशेषिक दर्शन की विशेषता है कि यह आत्मा को भी दृव्य मानता है। उनके मतानुसार ''हम सब तरह का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त करते है और ज्ञान का आश्रय आत्मा है। आत्मा ही मन के द्वारा समस्त इन्द्रियजन्य ज्ञान को गृहण करता है और फिर उसे काम में लाता है।''[1] उन्होंने आत्मा के लक्षण के विषय में कहा है कि ''सुख, दुःख, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, प्राण, अपान आंखे बंद करना, खोलना ये सब आत्मा के लक्षण है किसी अचेतन दृव्य में इच्छा, द्वेष आदि का अस्तित्व दिखलाई नही पड़ता। इसके अतिरिक्त 'अहंभाव' (मैं) भी किसी इन्द्रिय में उत्पन्न नही होता। इससे आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।''[2]

''आत्मशरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रवृत्तिदोषप्रेत्यभाव फल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।''[3]

न्याय दार्शनिकों के मतानुसार इसका आशय यह है कि ''आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, पुनर्जन्म, फल, दुःख, मोक्ष– ये 12 प्रमेय है।''[4] इन सब 12 प्रमेयों में आत्मा को प्रथम स्थान प्राप्त है–

''दर्शन स्पर्श नाभ्यामेकार्थग्रहणात्।''[5]

आत्मा को शरीर, इन्द्रिय, मन इत्यादि से भिन्न सिद्ध करने के लिए न्याय दर्शन ने एक ऐसा तर्क प्रस्तुत किया है। जिसे कभी भी काटा नही जा सकता है। न्याय दर्शन का मानना है कि आंख देखकर या देखने के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करती है, त्वचा स्पर्श के द्वारा सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त कर लेतीं है। लेकिन मनुष्य इन दोनों गुणों का समावेश कर, इन दोनों गुणों में सामन्जस्य उत्पन्न करके उसके वास्तविक स्वरुप का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होता है इस प्रकार जो शक्ति कई प्रकार के इन्द्रिय ज्ञान को मिलाकर उस पदार्थ की वास्तविकता को जान लेती है या उसका ज्ञान प्राप्त कर लेती है, वही आत्मा कहलाती है। इस प्रकार न्याय दर्शन में अन्य प्रमाणों को भी प्रस्तुत किया गया है। कि एक इन्द्रिय के द्वारा की गयी किया का प्रभाव अन्य इन्द्रिय पर पड़ता है। इसको महर्षि गौतम जी ने एक रूचिकर उदाहरण के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने बताया कि ''जैसे हमने खाने का कोई स्वादिष्ट या रुचिकर पदार्थ देखा तो उसी समय मुंह में पानी (लार) भर गया। इसमें एक इन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान को ग्रहण करके उसके द्वारा इन्द्रिय को प्रभावित करने वाली शक्ति भी आत्मा के सिवाय और कोई दिखलाई नही देती।''[6]

आत्मा नित्य व विभु के रुप में – न्याय दर्शन में आत्मा को नित्य माना जाता है। नैयायिकों का मानना है कि आत्मा नित्य होने के साथ ही साथ विभु के रुप में भी है अर्थात् आत्मा विभु है। आत्मा निराकार और निरवयव है। आत्मा एक अचेतन द्रव्य है। महर्षि कणाद ने आत्मा के विभु व नित्य स्वरुप की व्याख्या कुछ इस तरह से प्रस्तुत की है–

''विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा।''[7]

महर्षि कणाद ने आकाश को विभु माना है। उनका मानना है कि आकाश का सम्बन्ध अवयव वाले सभी पदार्थों से है और जो सबसे बड़ा है उसे ही विभु कहते हैं। इसलिए महर्षि कणाद ने आकाश को ही सबसे बड़ा माना है। आकाश का गुण शब्द है, आकाश सर्वत्र व्याप्त होता है इसलिए आकाश सर्वत्र विद्यमान होने के कारण विभु कहा जाता है। ठीक उसी प्रकार आत्मा भी कई जगह से सम्बन्ध रखता है, जैसे किसी व्यक्ति या मनुष्य ने आज हिन्दुस्तान में जन्म लिया तो यह आवश्यक नही कि वह अगले जन्म में भी हिन्दुस्तान में ही जन्म लेगा। वह अगले जन्म में विदेश में भी जन्म ले सकता है। वह मनुष्य कही भी इस पृथ्वी पर जन्म ले सकता है। और वेदों में अर्थात् श्रुतियों में भी इसका जिक्र है कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है वह एक शरीर को त्यागकर अन्य शरीर को धारण करता है। इस प्रकार आत्मा भी गतिशील हुयी और जो गतिशील है उसे विभु कहना तर्कसंगत प्रतीत होता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि आत्मा भी विभु है। नैयायिक आकाश की भॉति आत्मा को भी विभु मानते है बस फर्क इतना है कि आकाश अवयव वाले पदार्थों में रहता है। जबकि आत्मा अतिसूक्ष्म होने के कारण अवयव वाले पदार्थों और बिना अवयव वाले पदार्थों दोनों प्रकार के पदार्थों में समान रुप से रह सकती है।

आत्मा ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता के रुप में

नैयायिक आत्मा का ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता के रुप में प्रत्यक्ष करते है। न्याय दर्शन के अनुसार प्रत्येक मनुष्य स्वयं की आत्मा का प्रत्यक्ष कर सकता है परन्तु दूसरों की आत्मा का प्रत्यक्ष नही कर सकता। दूसरों की आत्मा का प्रत्यक्ष बुद्धि के द्वारा किया जा सकता है। इसके लिए बुद्धि का सहारा लेना होगा क्योंकि दूसरों की आत्मा का प्रत्यक्ष करने का एकमात्र साधन बुद्धि ही है। किन्तु स्वयं की आत्मा का प्रत्यक्ष स्वयं ही किया जा सकता है। आत्मा के इसी स्वरुप की व्याख्या करते हुए डी. डी. बंदिष्टे जी ने कहा है कि नैयायिकों का मानना है कि ''आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए बुद्धि, सुख, दुःख आदि के ज्ञाता, भोक्ता के रुप में आत्मा का प्रत्यक्ष करते है। हम अपने आत्मा का स्वयं प्रत्यक्ष कर सकते है, पर दूसरों के आत्माओं का प्रत्यक्ष बुद्धि के कार्यों द्वारा होता है। इसलिए नित्य चेतन आत्मा की आवश्यकता होती है। क्योंकि आत्मा को नित्य न मानने से कर्मवाद का अंत हो जायेगा।''[8]

आत्मा के इसी रुप को और अधिक स्पष्ट करते हुए राममूर्ति पाठक जी ने कहा है कि ''आत्मा ज्ञान नही है, बल्कि ज्ञाता है जो अहंवित्ति का आश्रय तथा भोक्ता है। आत्मा ज्ञाता, कर्ता एवं भोक्ता है। ज्ञातृत्व, कर्तव्य तथा भोक्तृत्व के कारण वह अन्य द्रव्यों से भिन्न है।''[9] नैयायिकों ने आत्मा को ज्ञान प्राप्त करने वाला ज्ञाता माना है। और जो कार्य करता है अर्थात् कर्ता माना है। इस प्रकार न्याय दर्शन में आत्मा को ज्ञाता, कर्ता के साथ ही

साथ भोक्ता भी माना है क्योंकि जब मनुष्य किसी प्रकार का कार्य करता है तो वह उसके फल को भी भोगता है। इसलिए आत्मा को नैयायिकों द्वारा ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता के रुप में स्वीकार करना सर्वथा उचित ही है।

आत्मा चैतन्य गुण के रुप में

न्याय दर्शन में आत्मा को एक द्रव्य मानते है जो शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से सर्वथा भिन्न है। नैयायिक शरीर और इन्द्रिय को अनित्य मानते है, जबकि आत्मा को नित्य मानते है। न्याय दर्शन में आत्मा के साधन के रुप में शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को स्वीकार किया गया है। नैयायिकों का कहना है कि शरीर आत्मा नही है, क्योंकि शरीर में अपनी चेतना नही होती है। वे ज्ञानेन्द्रियों को भी आत्मा मानना असंगत समझते है। इनका कहना है कि कल्पना, स्मृति, विचार, विमर्श आदि इन्द्रियों के कार्य नही है।

उनकी मान्यता है कि आत्मा इन्द्रियों को नियंत्रित करने वाली सत्ता है। जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करना व ज्ञान का संश्लेषण किया जाता है। नैयायिक मन को भी आत्मा नही मानते है। उनके अनुसार आत्मा और मन सर्वथा भिन्न है। मन आत्मा के अधीन रहती है। आत्मा के अधीन रह कर ही मन संचालित होता है। मन आत्मा के ज्ञान प्राप्ति का साधन मात्र है। ज्ञान की प्राप्ति के माध्यम से ही सम्भव है। क्योंकि मन ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा आत्मा को सुख, दुःख आदि ज्ञान की अनुभूति सम्भव हो पाती है। नैयायिक आत्मा, मन, इन्द्रिय में ऐक्य नही मानते अपितु उनका कहना है कि आत्मा एक नही है। क्योंकि आत्मा तो प्रत्येक शरीर में होती है। यदि आत्मा एक होती तो सभी मनुष्य एक जैसे होते। जो इस दुनिया में विभिन्नता परिलक्षित होती है वो नही होती। किसी एक मनुष्य के सुन्दर होने पर सभी मनुष्य सुन्दर होते और इसी तरह किसी एक मनुष्य के लंगड़े होने पर सभी मनुष्य लंगड़े होते। परन्तु वास्तविकता में ऐसा बिल्कुल भी देखने को नही मिलता है। इस संसार में तो भॉति– भॉति के लोगों के दर्शन होते है।

संसार में हमेशा ही विविधता परिलक्षित होती है। विश्व में तो कोई छोटा, मोटा, कुरुप दिखाई देता है तो कोई लम्बा, पतला, सुन्दर दिखाई देता है। इस तरह स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि आत्मायें एक नही बल्कि अनेंक हैं। जो प्रत्येक शरीर में निवास करती हैं। नैयायिक चैतन्य को आत्मा का आवश्यक या स्वरुप गुण न मानकर आगन्तुक गुण मानते है क्योंकि आत्मा में चैतन्य सदैव विद्यमान नही रहता है बल्कि संयोगवश चैतन्य की उपस्थिति होती है। न्याय दर्शन में आत्मा को अचेतन द्रव्य मानते है। नैयायिकों का मानना है कि मन और शरीर के संयोग से ही चैतन्य का गुण विकसित होता है। इसीलिए चैतन्य को आत्मा का आगन्तुक गुण मानना अधिक तर्क संगत है जबकि आवश्यक गुण या स्वरुप गुण मानना असंगत प्रतीत होता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि नैयायिक चैतन्य को आत्मा का आगन्तुक गुण मानते है। न्याय दर्शन में आत्मा को ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता कहा जाता है। यह माना जाता है कि सबका द्रष्टा आत्मा ही है। नैयायिक ज्ञान को भी आत्मा का आगन्तुक गुण मानते है। आत्मा में चैतन्य की उपस्थिति तभी प्रतीत होती है जब इसका मन के साथ, मन का इन्द्रियों के साथ और इन्द्रियों का वाहय वस्तुओं के साथ सम्पर्क स्थापित होता है।

''आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।''[10]

न्याय दर्शन में आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, मन, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग। इन 12 प्रकार के प्रमेयों का वर्णन मिलता है। जिसमें से आत्मा को प्रथम और अपवर्ग को अन्तिम स्थान प्राप्त है।

''इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगम्।''[11]

न्याय दार्शनिक इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान आदि को आत्मा के लिंग अथवा साधक हेतु मानते है। उनके अनुसार आत्मा स्वयं द्रव्य रुप है किन्तु वह गुण कर्म का आधार है। गुण व कर्म द्रव्य रुपी आत्मा में ही आश्रय पाते है। नैयायिक ज्ञान को आत्मा का आगन्तुक गुण मानने के कारण चैतन्य को भी आत्मा का आगन्तुक गुण मानते है। उनका मानना है कि चूंकि चैतन्य आत्मा में सदैव विद्यमान नही रहता है इसलिए चैतन्य को आत्मा का आगन्तुक गुण मानना चाहिए न कि आवश्यक गुण या स्वरुप गुण मानना चाहिए।

आत्मा की अनन्तता/अनेकता

जीवात्मा को ही न्याय– वैशेषिक दर्शन में आत्मा की संज्ञा दी गयी है। नैयायिकों का मानना है कि आत्मा अनेक होती है। दुनिया में जितने शरीर पाये जाते है, उतनी ही आत्मायें भी है। न्यायिकों ने जीवात्मा को अथवा आत्मा को नित्य, निरवयव व विभु माना है। न्याय– वैशेषिक दर्शन में आत्मा के सम्बन्ध में कहा गया है कि प्रत्येक आत्मा के ज्ञान और अनुभव भिन्न होते है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आत्मा अनेक है। वैशेषिक दार्शनिकों का मानना है कि यदि आत्मा एक ही है तो एक ही आत्मा की मुक्ति से सभी आत्माओं की मुक्ति हो जानी चाहिए। और इसी प्रकार एक आत्मा के बंधन में पड़ जाने से सभी आत्मायें बंधन में होनी चाहिए। न्याय– वैशेषिकों का दावा है कि शास्त्र भी आत्मा की अनेकता को स्वीकार करते है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि आत्मा एक नही वरन् अनेक है। यही कारण है कि सभी आत्मायें अपने द्वारा किये गये कर्मों का फल भी भोगती है। ''वह अपने विविध अनुभवों के मध्य एक बना रहता है। वेद के जो भाग जीवात्मा का परमात्मा से अभेद बताते हैं, उनका प्रयोजन केवल जीवात्मा और परमात्मा का साम्य बताना है, उनको नितान्त एक बताना नही। जब जीवात्मा संसार से पूरी तरह मुक्त हो जाता हैः तब वह परमात्मा के समान हो जाता है। लेकिन मुक्ति की अवस्था में भी जीवात्मा अपना पार्थक्य बनायें रखता है, ईश्वर में उसका विलय नहीं होता। जीवात्माओं का आपस में और परमात्मा से भेद पारमार्थिक है। इस भेद को कभी भी नही मिटाया जा सकता है।''[12]

जिस प्रकार आत्मा एक नही होकर अनेक होती है और प्रत्येक शरीर में भिन्न – भिन्न आत्मा का निवास होता है। ठीक उसी प्रकार आत्माओं की अवस्थायें भी भिन्न–भिन्न होती हैं। कुछ आत्माओं की अवस्थायें सुखमय होती हैं जबकि कुछ आत्माओं की अवस्थायें दुःखमय होती है। इसी तरह कुछ आत्माओं की अवस्थायें निर्धनता लिए

हुए होती है जबकि कुछ आत्माओं की अवस्थायें धनाढय होती है। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आत्मा एक नही है बल्कि आत्मा अनेक है। उपर्युक्त इन सभी कथनों से आत्मा की अनेकता की सिद्धि हो जाती है।

आत्मा के अस्तित्व के प्रमाण

नैयायिकों ने आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में कई प्रमाण प्रस्तुत किये है। चूंकि न्याय दर्शन तर्कशास्त्र, प्रमाणशास्त्र आदि नामों से जाना जाता है, इसलिए न्याय–वैशेषिक कितने प्रमाणों को स्वीकार करते है? इसकी चर्चा करना भी अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। इन्ही प्रमाणों के माध्यम से ही न्याय दर्शन में आत्मा, परमात्मा आदि के अस्तित्व को प्रमाणित किया जाता है।

''प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्क
निर्णयवाद जल्पवितण्डा
हेत्वाभासछलजाति निग्रहस्थानानां
तत्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः।''[13]

न्याय दर्शन में 16 प्रकार के प्रमाण माने जाते है जो इस प्रकार है– प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान आदि सब तत्वज्ञान प्राप्त करने के साधनमात्र है। न्याय दर्शन में इन्ही 16 पदार्थों की महत्ता है।

''प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि।''[14]

नैयायिकों ने प्रमााण के चार भेदों को स्वीकार किया है। उनके अनुसार प्रमाण चार प्रकार के होते है– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। नैयायिकों का कहना है कि जब किसी पदार्थ को प्रमााणित करना होता है तो उन्ही चारों प्रमाणों के माध्यम से ही उस पदार्थ को सिद्ध किया जाता है और इन्ही चारों प्रमाणों के द्वारा ही उक्त पदार्थ का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

''इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि
व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।''[15]

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय के विषय से सन्निकर्ष या संयोग से उत्पन्न होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान सदैव दिखाई पड़ता है। जब हम कहते है कि अमुक व्यक्ति हंस रहा है, अमुक व्यक्ति खाना बना रहा है तो ये नेत्रों के द्वारा प्रत्यक्ष हो रहा है। प्रत्यक्ष किये हुए ज्ञान पर कभी भी संदेह नही किया जा सकता है। क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त किये गये अनुभव से उत्पन्न मानी जाती है। इस प्रकार इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही नैयायिकों ने प्रत्यक्ष ज्ञान की संज्ञा दी है। नैयायिकों का मानना है कि प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वोत्कृष्ट ज्ञान की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि वही सर्वोपरि होता है। ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञान को किसी के भी द्वारा काटा नही जा सकता है। क्योंकि नैयायिकों ने प्रत्यक्ष ज्ञान को अकाट्य माना है। नैयायिकों ने प्रत्यक्ष प्रमाण के पश्चात् अनुमान प्रमाण को भी महत्वपूर्ण प्रमाण माना है।

''अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो
दृष्टञ्च।''[16]

न्याय दार्शनिकों का मानना है कि पूर्व में हुयी घटना का प्रत्यक्ष कर जब हम पुनः उस घटना को देखते है तो यह अनुमान कर लेते है कि अमुक घटना का अमुक परिणाम प्राप्त होगा। इसे ही अनुमान प्रमाण कहते है। उदाहरणस्वरुप धुआं उठता देखकर हम आग का अनुमान कर लेते है। अनुमान प्रमाण के पश्चात् न्याय दर्शन में उपमान प्रमाण को स्वीकृति प्राप्त है।

''प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्।''[17]

नैयायिकों की मान्यता है कि यदि किसी पदार्थ में प्रसिद्ध पदार्थ, जिसे सब लोग जानते है जैसे लक्षण हो और उन लक्षणों को देखकर उस पदार्थ का नाम बता देने से उसका ज्ञान हो जाये तो ऐसे प्रमाण को न्याय दर्शन में उपमान प्रमाण की संज्ञा दी गयी है। दूसरें शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रसिद्ध वस्तु की समानता के आधार पर एक नयी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना उपमान कहलाता है। नैयायिकों ने इन तीन प्रमाणों के साथ ही साथ एक और प्रमाण की चर्चा की है जिसे शब्द प्रमाण कहते है।

''आप्तोपदेशः शब्दः।''[18]

नैयायिकों का मानना है कि आप्त पुरुषों द्वारा दिये गये उपदेश ही शब्द प्रमाण माने जाते है। आप्त पुरुष से तात्पर्य है ज्ञानी पुरुष या विश्वसनीय पुरुष। इनमें से ज्ञानी या विश्वसनीय व्यक्ति भी हो सकता है और शास्त्र भी विश्वसनीय हो सकते है। इस प्रकार शब्द प्रमाण को भी न्याय दर्शन महत्वपूर्ण प्रमाण के अन्तर्गत रखते है। इस प्रकार नैयायिक चार प्रमाणों को मानते है– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इन्ही चार प्रमाणों के द्वारा ही किसी पदार्थ के अस्तित्व को सिद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार नैयायिकों ने निम्नलिखित प्रमाणों के द्वारा आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित किया है जो इस प्रकार है–

(क) श्रुति प्रमाण
(ख) अनुमान प्रमाण
(ग) प्रत्यक्ष प्रमाण

श्रुति प्रमाण को शब्द प्रमाण कहते है। आप्त पुरुष के उपदेशों को शब्द कहा जाता है। आप्त पुरुष वे होते है जों यर्थाथ ज्ञान प्रदान करें अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसका उसी रुप में ज्ञान कराये। इस प्रकार आप्त पुरुष कोई व्यक्ति या वेद भी हो सकते है। चूंकि आप्त पुरुष विश्वसनीय को कहा जाता है इसलिए शास्त्र भी विश्वसनीय माने जाने के कारण आप्त पुरुष हुए। वेदों में, शास्त्रों में आत्मा नामक तत्व की विशद् चर्चा हुयी है। इस प्रकार हम कह सकते है कि श्रुति प्रमाण के द्वारा आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया जा सकता है। क्योंकि विभिन्न शास्त्रों, उपनिषद्, पुराणों, वेदों में आत्मा नामक सूक्ष्म तत्व पर विस्तृत चर्चा की गयी है। शब्द प्रमाण भी दो प्रकार के होते है– दृष्टान्त शब्द और अदृष्टान्त शब्द। दृष्टान्त शब्द वे है जिनका प्रत्यक्ष किया जा सके। उदाहरणस्वरुप शिक्षक ने कश्मीरी शॉल के बारें में बताया और हमने कश्मीर जा कर उस शॉल को देखा और उसका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ तो ऐसे ज्ञान जिनका प्रत्यक्ष सम्भव है, उन्हे दृष्टार्थ शब्द कहते है और अदृष्टार्थ शब्द वे होते है जिनका प्रत्यक्ष करना असम्भव सा प्रतीत होता है। उनका प्रत्यक्ष नही किया जा सकता है, उन्हे अदृष्टार्थ शब्द कहते है। उदाहरण के लिए शिक्षक ने स्वर्गलोक के बारें में कोई जानकारी दी, किन्तु हम

स्वर्गलोक जाकर उसका प्रत्यक्ष करने में असमर्थ है। इसीलिए ऐसे शब्दों को अदृष्टार्थ शब्द कहते है।

इस प्रकार आत्मा का भी हम प्रत्यक्ष नही कर सकते है। अपितु वेदों में आत्मतत्व की बहुत चर्चा हुयी है किन्तु हम उसका प्रत्यक्ष करने में असमर्थ है। इसीलिए आत्मा के विषय में या आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए जिस प्रमाण का उपयोग हुआ उसे अदृष्टार्थ शब्द प्रमाण कहा जाता है। क्योंकि इस प्रमाण के माध्यम से यह तो निश्चित हो गया है कि आत्मा जैसे तत्व का अस्तित्व है किन्तु उसका प्रत्यक्ष करनें में असमर्थ है। इस प्रकार श्रुति प्रमाण के माध्यम से आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। ''लिंग का परामर्श होना अनुमान है व्याप्ति की सहायता से वस्तु का बोध कराने वाले को लिंग या हेतु कहते है, जैसे धूम अग्नि का लिंग है। व्याप्ति का अर्थ साहचर्य नियम है जैसे– जहॉ जहॉ धूम है वहॉ वहॉ अग्नि भी है। जब व्याप्ति से विशिष्ट लिंग का ज्ञान पक्ष में उत्पन्न होता है उसे ही लिंग परामर्श कहते है। तर्क संग्रह में परामर्श के विषय में कहा गया है कि व्याप्ति से विशिष्ट पक्ष धर्मता का ज्ञान ही परामर्श है। उदाहरण के लिए अग्नि के द्वारा व्याप्य धूम से युक्त यह पर्वत है। ऐसा ज्ञान परामर्श है। इस परामर्श से 'पर्वत भी अग्निमान' यह ज्ञान उत्पन्न हुआ, यही अनुमिति है।''[19] नैयायिकों ने अनुमान को एक प्रमाण के रुप में माना है। अनुमान में व्याप्ति का सम्बन्ध देखने को मिलता है। नैयायिकों का मानना है कि अनुमान के व्याप्ति ज्ञान के माध्यम से भी ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है।

''प्रत्यक्षमनुमानमेकदेश ग्रहणादुपलब्धेः।''[20]

नैयायिकों का कहना है कि जब इन्द्रिय और विषय का संयोग होता है तो प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर ही अनुमान किया जाता है। क्योंकि यदि वृक्ष को देखा जाये तो एक समय में वृक्ष का एक ही भाग परिलक्षित होगा अथवा दिखाई देगा। नेत्रों के माध्यम से उस वृक्ष के पीछे का भाग देखने में असमर्थता होगी। जबकि ज्ञान तो सम्पूर्ण वृक्ष का होना चाहिए। इस प्रकार हम प्रत्यक्ष किये गये वृक्ष के भाग के आधार पर ही वृक्ष के अन्य भाग का अनुमान के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करते है। उदाहरणस्वरुप हमें देखने को मिलता है कि कहीं पर धुआं निकल रहा है तो प्रत्यक्ष तो हमें केवल धुएं का ही हो रहा है। तो हम उस धुएं के आधार पर ही यह अनुमान कर लेते है कि वहॉ अग्नि भी होगी। क्योंकि अक्सर देखने को मिलता है कि जहॉ जहॉ धुआं होता है, वहॉ अग्नि अवश्य होती है। इसी धुएं और अग्नि के साहचर्य सम्बन्ध को आधार बना कर हम अनुमान कर लेते है। चूंकि नैयायिक शरीर को मानते है। इसलिए शरीर को चेतनता प्रदान करने वाली आत्मा का अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार नैयायिकों ने अनुमान प्रमाण के माध्यम से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया है। जो भारतीय दर्शन में चार्वाक दर्शन को छोड़कर अन्य सभी दार्शनिकों को भी स्वीकार्य है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनुमान प्रमाण के द्वारा आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। ''इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते है। सन्निकर्ष का अर्थ है– सम्बन्ध। नेत्र का घट के साथ सम्बन्ध होने पर घड़े का ज्ञान होता है, यही प्रत्यक्ष कहलाता है। आत्मा में प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होने के लिए तीन सम्बन्धों की आवश्यकता होती है। आत्मा का मन में, आत्मा का इन्द्रिय के साथ तथा इन्द्रिय का विषय के साथ संयोग होना आवश्यक होता है। आत्ममनःसंयोग ज्ञानमात्र के लिए आवश्यक होता है।''[21]

नैयायिकों का मानना है कि सबसे पहले तो घड़े का चक्षु के साथ संयोग होता है। जिसमें चक्षु इन्द्रिय है और घड़ा विषय है जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाना है। इसके पश्चात् इन्द्रिय का मन के साथ संयोग स्थापित होता है। तत्पश्चात चक्षु इन्द्रिय वस्तु या विषय का संयोग मन से करा देती है। फिर भी घड़े का ज्ञान उत्पन्न नही होता है। घड़े का ज्ञान तभी उत्पन्न होता है जब मन का संयोग आत्मा से होता है। आत्मा जब तक ध्यान नही देती है अर्थात् यदि आत्मा का ध्यान अन्यत्र लगा हो तो उक्त विषय का ज्ञान प्राप्त करने में हम समर्थ नही हो सकते। जब आत्मा का ध्यान मन की ओर संयुक्त होता है तभी ज्ञान की उत्पत्ति होती है। आत्मा का ध्यान अन्यत्र होने से घट का प्रत्यक्ष ही नही हो पाता जिससे ज्ञान की उत्पत्ति भी नही हो पाती। इसलिए यह परम आवश्यक है कि आत्मा का संयोग मन से हो जिससे ज्ञान की उत्पत्ति हो सके। इसलिए यह कहा जा सकता है कि किसी अन्य वस्तु के ज्ञान के लिए आत्मा और मन के संयोग की सदैव ही आवश्यकता बनी रहती है। नैयायिकों ने आत्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा प्रमाणित किया है। उनके अनुसार आत्मा की अनुभूति प्रत्यक्षतः होती है।

प्रत्यक्ष प्रमाण ही एकमात्र ऐसा प्रमाण है। जिसे भारतीय दर्शन में सभी दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। नैयायिकों की मान्यता है कि प्रत्यक्ष प्रमाण के माध्यम से प्राप्त ज्ञान निश्चित, असंदिग्ध तथा यथार्थ होता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान की प्राप्ति होती है, उसे ही प्रत्यक्ष कहते है। प्रत्यक्ष को दो भागों में विभाजित किया जाता है– पहला लौकिक प्रत्यक्ष और दूसरा अलौकिक प्रत्यक्ष। आत्मा का ज्ञान हमें अलौकिक प्रत्यक्ष से प्राप्त होता है। क्योंकि लौकिक प्रत्यक्ष से संसार की अन्य सांसारिक वस्तुओं का प्रत्यक्ष होता है। इसलिए नैयायिकों ने आत्मा के अस्तित्व को प्रत्यक्ष प्रमाण के माध्यम से प्रमाणित किया। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आत्मा का अस्तित्व है। आत्मा की अनुभूति इन्द्रियों के माध्यम से प्रत्यक्षतः होती है। ''उद्योतकर कहते है कि आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान प्रत्यक्ष से भी होता है। वैशेषिक दर्शन कहता है कि आत्मा को यौगिक प्रत्यक्ष से जाना जाता है। तर्कभाषा में केशव मिश्र जी ने कहा है कि आत्मा मानस प्रत्यक्ष है। यदि कोई आत्मा के अस्तित्व का खण्डन करे तो न्याय दर्शन उस खण्डन का खण्डन करके आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करेगा।''[22] यही कारण है कि न्याय दर्शन में आत्मा के अस्तित्व को प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा प्रमाणित किया जाना ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता है।

''नात्मप्रतिपत्तिहेतुनां मनसि सम्भवात्।''[23]

नैयायिकों की मान्यता है कि दर्शन एवं स्पर्शन ज्ञानों से एक भिन्न आत्मा प्रमाणित होता है। न्याय दर्शन में आत्मा को शरीर से सर्वथा भिन्न माना गया है। आत्मा को शरीर में निवास करने से पृथक् नही कहा जा सकता है। आत्मा के साधक हेतुओं का मन रुप स्थिर तथा नित्य

आन्तरिक इन्द्रिय में हो सकने से आत्मा को शरीर आदि समुदायों से भिन्न नही माना जा सकता है। क्योंकि मन भी बाहर के रुप आदि तथा अन्दर के सुख से सभी विषयों को आसानी से गृहण करता है। इसीलिए नैयायिकों का मानना है कि शरीर आदि समुदायों से भिन्न आत्मा का कोई स्वरुप नही है अथवा आत्मा भिन्न नही है।

''ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोंपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम्।''[24]

नैयायिकों का कहना है कि मनुष्य आंख से प्रत्यक्ष करता है, नाक से सूंघने की क्रिया करता है इन सभी व्यवहारों से और स्मरण आदि कभी मन के द्वारा किया जाता है, आदि प्रचलित व्यवहारों के कारण ही जानने वाले कर्ता को वाहय तथा आन्तरिक ज्ञान के साधक माना जाता है। अथवा दूसरें शब्दों में कहा जा सकता है कि जानने वाला ज्ञाता और कर्म करने वाला कर्ता भिन्न न होकर ज्ञान के साधनमात्र है। इसीलिए न्याय दर्शन कर्ता को आत्मा नही कहता अपितु मन को कर्ता की संज्ञा देकर मन के अन्दर ज्ञान के साधन न मानकर, उसको ही आत्मा कहते है। ऐसा करने में केवल नाममात्र का ही भेद है। इसीलिए नैयायिक आत्मा को मन नही मानते है। वे आत्मा को शरीर और मन से भिन्न मानते है। उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा का अस्तित्व है। न्याय दर्शन में आत्मा को एक स्वतंत्र पदार्थ के रुप में निरूपित किया गया है। आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए नाना प्रकार के प्रमाणों का भी उपयोग किया गया है। जिसके माध्यम से आत्मा का अस्तित्व है, सिद्ध हो सके।

न्याय दर्शन में इच्छा, प्रयत्न, द्वेष, सुख, दुःख आदि से प्रमाणित हो जाता है कि आत्मा का अस्तित्व है। नैयायिकों ने इच्छा के माध्यम से भी यह प्रमाणित किया है कि आत्मा का अस्तित्व है क्योंकि न्याय दर्शन में आत्मा को एक नित्य, निरवयव माना गया है। जो भूतकाल में अनुभव की गयी सुखद वस्तु का स्मरण करता है जिससे उसमें इच्छा की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वह उन सुखद वस्तुओं को पुनः प्राप्त करने के लिए इच्छा करने लगता है। क्योंकि भूतकाल में प्राप्त की गयी सुखद वस्तुओं का स्मरण बना रहता है। ठीक इसी प्रकार नैयायिकों का मानना है कि जिस प्रकार इच्छा से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है, ठीक उसी तरह द्वेष से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। जो भूतकाल में अनुभव की गयी दुःखद व कष्टकारी अनुभूतियां है, उन्हे याद रखता है। और भविष्य में उन दुःखदायी वस्तुओं से दूर रहने का प्रयत्न करता है। क्योंकि वे दुःखद वस्तुयें स्मरण में बनी रहती है जिससे उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार न्याय दर्शन में द्वेष के माध्यम से भी आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है। क्योंकि भूतकाल का प्रत्यक्ष अनुभव और स्मरण आत्मा द्वारा ही सम्भव है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त कथनों के माध्यम से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नैयायिक आत्मा को ज्ञान के आश्रय के रुप में सिद्ध करते है। न्याय– वैशेषिक एक समानतंत्र होने के कारण न्याय दर्शन के आत्मा सम्बन्धी मत को वैशेषिक दर्शन स्वीकार करते है। और वैशेषिक दर्शन के आत्मा सम्बन्धी मत न्याय दर्शन को स्वीकार्य है। ज्ञान के आश्रय के रुप में, किसी वस्तु के प्रत्यक्ष कर्ता के रुप में, आत्मा के अस्तित्व को सर्वथा स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आत्मा का अस्तित्व है। इसलिए नैयायिकों आत्मा को नित्य, विभु, कर्ता, ज्ञाता और भोक्ता, निराकार, निरवयव मानते है। उनका मानना है कि आत्मा का अस्तित्व है जो कि नैयायिकों ने प्रमाणों द्वारा प्रमाणित भी किया है। नैयायिक आत्मा को नित्य, निरवयव, निराकार, परम तत्व मानते है, वे आत्मा को एक स्वतंत्र द्रव्य के रुप में स्वीकार करते है। नैयायिक मानते है कि इच्छा, द्वेष, ज्ञान, सुख और दुःख शरीर के गुण नही है, ये शरीर से भिन्न है। इसलिए इनका कर्ता शरीर आदि से भिन्न नित्य पदार्थ होना चाहिए। और वह नित्य पदार्थ आत्मा ही है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आत्मा का अस्तित्व है। इसी प्रकार इच्छा, द्वेष के साथ साथ नैयायिकों ने प्रयत्न, सुख, दुःख के द्वारा भी आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। नैयायिकों ने आत्मा को ज्ञानेन्द्रियों के अनुभवों को संगठित करने वाला परम तत्व माना है। आत्मा का गुण चैतन्य ही ज्ञानेन्द्रियों के अनुभवों को संगठित करता है। और उसे अर्थ प्रदान करता है।

नैयायिकों का मानना है कि आत्मा के द्वारा ही इन्द्रिय संवेदनों का संश्लेषण किया जाता है। इसे आत्मा के कार्य के अन्तर्गत रखा गया है। क्योंकि इन्द्रिय संवेदनों का संश्लेषण ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा नही किया जा सकता है। इसीलिए इसे आत्मा का काम बताया गया है। आत्मा के पास ही ऐसा गुण है जिसके द्वारा आत्मा रुप और गंध को एक में मिलाकर उन्हे एक वस्तु के रुप में गृहण कर सकती है। इसीलिए यह काम आत्मा का माना जाता है। सभी वस्तुओं का ज्ञान केवल आत्मा को ही होता है जो कि ज्ञानेन्द्रियों से भी श्रेष्ठ माना जाता है। ज्ञानेन्द्रियां तो उन वस्तुओं को जानने का साधनमात्र है। आत्मा का गुण चैतन्य है यह चैतन्य ही ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान को सही रुप और अर्थ प्रदान करता है। इस प्रकार नैयायिकों ने आत्मा को ज्ञानेन्द्रियों के अनुभवों को संगठित करने वाला तत्व माना और इसी के माध्यम से यह प्रमाणित भी किया कि आत्मा का अस्तित्व विद्यमान है। नैयायिकों ने आत्मा को ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता के रुप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार आत्मा कार्य भी करता है और उसके फल का भोग भी करता है। नैयायिकों ने अनेक आत्माओं में भी विश्वास जताया है जिसके लिए उन्होनें प्रासंगिक तर्क भी प्रस्तुत किये है।

नैयायिकों की मान्यता है कि इन्द्रियां साध्य न होकर साधन हैं। इसलिए इसका उपयोग करने के लिए किसी कर्त्ता की अनिवार्यता सिद्ध होती है। इस प्रकार यह कर्ता कोई और न होकर आत्मा ही है जो कर्ता के रुप में अस्तित्ववान है। इस कथन से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि आत्मा का अस्तित्व है। इस प्रकार निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि नैयायिकों ने आत्मा को नित्य, निरवयव, परम तत्व माना है। आत्मा को ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता भी माना है। वे अनेक आत्माओं में विश्वास रखते है। अतः स्पष्ट होता है कि नैयायिकों ने

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है और उसे सिद्ध करने के लिए उचित तर्कों को भी प्रस्तुत किया है।

अंत टिप्पणी

1. *कणाद महर्षि, वैशेषिक दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स.– 11*
2. *वही*
3. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स.– 10*
4. *वही*
5. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स.– 11*
6. *वही*
7. *कणाद महर्षि, वैशेषिक दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स.– 180*
8. *डॉ. बंदिष्टे डी. डी. , डॉ. शर्मा रमाशंकर, भारतीय दार्शनिक निबन्ध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी , भोपाल, षष्ठ संशोधित संस्करण–2008, पृ. स. –51*
9. *न्यायभाष्य 1/1/9। पाठक राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रुपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 2000, पुनर्मुद्रित, 2004, पृ. स. –83*
10. *आचार्य दुण्ढिराजशास्त्रि, न्यायदर्शनम् (वात्स्यायनभाष्यसहितम्), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. स. – 42*
11. *आचार्य दुण्ढिराजशास्त्रि, न्यायदर्शनम् (वात्स्यायनभाष्यसहितम्), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. स. – 44*
12. *जे. एन. सिन्हा, भारतीय दर्शन, पृ. स. – 90–91*
13. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स. –25*
14. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स. –26*
15. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स. –26*
16. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स. –27*
17. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स. –28*
18. *वही*
19. *प्रो. 'ऋषि' उमाशंकर शर्मा, सर्वदर्शन संग्रह, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, पृ.स.– 392*
20. *गौतम महर्षि, न्याय दर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण–1964, पृ. स.– 69*
21. *आचार्य उपाध्याय बलदेव, भारतीय दर्शन, चौखम्बा ओरिएण्टालिया, वाराणसी, संस्करण–1976, पृ.सं. –179*
22. *पाण्डेय संगमलाल, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, संशोधित संस्करण, 2002पृ. स. – 188*
23. *दुण्ढिराजशास्त्रि आचार्य, न्यायदर्शनम् (वात्स्यायनभाष्यसहितम्), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. स.– 313*
24. *आचार्य दुण्ढिराजशास्त्रि, न्यायदर्शनम् (वात्स्यायनभाष्यसहितम्), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ. स.– 313*